विपश्यना

[साधकों का मासिक प्रेरणापत्र]

रजि. नं. १९१५६/७१

पोस्टल रजि. नं. NSK - 64

वर्ष ७ • बम्बई • बुद्धवर्ष २५२१ • मार्गशीर्ष पूर्णिमा [शक] • दि. २५-१२-१९७७ • अंक ७

प्रवचन प्रवाह

१ (ग)

अगर किसी कल्पना को हमने अपना आलंबन बना लिया और उस कल्पना के सहारे यात्रा करनी शुरू कर दी तो किसी बड़ी कल्पना में अटक कर रह जा सकते हैं। खतरा हो सकता है। अगर सच्चाई का सहारा लिया और सच्चाई के ही सहारे चल पड़े तो देर-सबेर परम सत्य तक अवश्य पहुंच जायेंगे। परम सत्य तक पहुंचने के लिए कल्पना का सहारा नहीं लिया जाता। सत्य का ही सहारा लेना होगा, भले प्रारंभ में वह भासमान स्थूल-स्थूल सत्य ही क्यों न हो। यह जो हमने सांस का सहारा लिया और इसके साथ किसी कल्पना को नहीं जुड़ने दिया, इसका मुख्य कारण यही है कि हम महज सच्चाई के प्रति जागरूक हैं—सांस ले रहा हूं, सांस छोड़ रहा हूं—इसमें कुछ भी झूठ नहीं है। भले बड़ी मोटी-मोटी सच्चाई है। और इसके बाद देखेंगे कि कैसे एक दिन से दूसरे दिन इससे अधिक सूक्ष्म अवस्था, इससे अधिक सूक्ष्म सच्चाई की ओर बढ़ते जा रहे ह। होगी यह ऐन्द्रिय जगत की ही सच्चाई जो हमारे इस शरीर की सीमा के भीतर-भीतर है। अपने ही बारे में, अपने ही भीतर की सच्चाई। भीतर ही भीतर सारे ऐंद्रिय-जगत का निरीक्षण करते-करते सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतम अवस्था तक पहुंचेंगे और फिर उसका भी अतिक्रमण कर इंद्रियातीत अवस्था तक जा पहुंचेंगे, भवातीत, लोकातीत अवस्था तक जा पहुंचेंगे; जो कि नित्य है, शाश्वत है, ध्रुव है, कूटस्थ है। लेकिन पहले से उसकी कोई कल्पना करके नहीं चलेंगे। जिस दिन, जिस समय, जिस क्षण, उसका साक्षात्कार होगा, उसी क्षण उसे स्वीकार करेंगे। पहले नहीं। तब तक वह हमारे लिए स्वीकार्य नहीं। भले वह जैसी भी हो...अपनी जगह। न उसका खंडन। न उसका मंडन। जो-जो स्थिति सामने आती चली जायेगी, उस-उस स्थिति को स्वीकार करते हुए आगे बढ़ेंगे। यूं सत्य की खोज करनी है... एक सत्यान्वेषी वैज्ञानिक की तरह ... तथ्यता के पहारे अंतिम तथ्य की। सच्चाई के सहारे अंतिम सत्य की।

हमारे इस शरीर के भीतर क्या-क्या हो रहा है? हमने कब देखा? कब जाना? कब अनुभव किया? इस शरीर-प्रपंच को समझने के लिए यह जो बाहर-बाहर के अवयव हैं—हाथ, पांव, आंख इत्यादि, इनको हम जान सकते हैं कि ये कैसे काम करते हैं। हमारे आदेश पर काम करते हैं। हमारी इच्छाओं पर काम करते हैं। हमारा मन होता है कि हाथ उठ जाय तो उठता है, गिर जाय तो गिर जाता है। हमारा मन होता है कि पांव आगे चले तो चलता है, रुक जाय तो रुकता है। यह आंख भी, चाहें खुली रहे तो खुली रहती है, बंद हो जाय तो बंद हो जाती है। शरीर के ये बाहरी-बाहरी अवयव हमारे आदेश पर चलने वाले हैं। लेकिन भीतर के जो अवयव हैं, जो अंग हैं, वे तो हमारे हुक्म का इंतजार नहीं करते। जैसे फेफड़े, हृदय इत्यादि। वे इस बात की प्रतीक्षा नहीं करते कि हम कहें चल, तो चलेंगे; कहें बंद हो जा, तो बंद हो जायेंगे। वे तो अपने स्वभाव से चलते ही रहते हैं। उनके बारे में हम क्या जानते हैं? भीतर के इन मोटे-मोटे अंगों की क्या बात करें? इनसे भी सूक्ष्म--यह सारा का सारा शरीर ऐसे सूक्ष्म-सूक्ष्म असंख्य जीवकोषों से बना है, ऐसे सूक्ष्म-सूक्ष्म असंख्य परमाणु कणों से बना है और प्रत्येक जीव-कोष में कुछ न कुछ नर्तन चलता रहता है, प्रत्येक परमाणु में कुछ न कुछ हरकत होती रहती है। वह हमारे हुक्म का इंतजार नहीं करते। शरीर के प्रत्येक कण में कुछ न कुछ खटपट होती ही रहती है। होती ही रहती है। समग्र शरीर पिण्ड में किसी न किसी प्रकार की जीव-रसायनिक प्रतिक्रिया, किसी न किसी प्रकार की विद्युत चुम्बकीय प्रतिक्रिया प्रतिक्षण होती ही रहती है। हमने कब अनुभव किया उसको? हम क्या जानते हैं उसके बारे में?

धम्म वाणी

आनापानसति यस्स परिपुण्णा सुभाविता।
अनुपुब्बं परिचिता तथा बुद्धेन देसिता।
सो इमं लोकं पभासेति अब्भा मुत्तोव चन्दिमा॥

—पटिसम्भिदा मग्ग

जैसे भगवान बुद्ध ने उपदेश दिया है वैसे ही एक के बाद एक क्रमशः आने-जाने वाले श्वासों की जानकारी रखते हुए जो साधक आनापान स्मृति की साधना को अभ्यास द्वारा परिपूर्ण और परिपक्व (सुभावित) करता है, वह मेघ-मुक्त चन्द्रमा की भांति इस लोक को प्रकाशमान करता है।

जब तक अपने भीतर की शरीर संबंधी इस सच्चाई को उन गहराइयों तक स्वयं नहीं देख लें, तब तक हम अंधे हैं। इस बारे में तो अंधे ही हैं न ? पुस्तकें हजार पढ़ी हो – सारा शरीर भंगुर है, नाशवान हैं, मिट्टी है, प्रतिक्षण भंग हुए जा रहा है। केवल पढ़ा है, सुना है। बुद्धि पर एक लेप ही लगाया है इसका। हमें स्वयं अनुभूति कहां हुई इस भंगुरता की ? और जब तक स्वानुभूति नहीं होती, तब तक शरीर के प्रति यह जो गहरी आसक्ति है, वह टूटने वाली नहीं है। ऊपर-ऊपर से हजार माने जायेंगे – यह शरीर तो नाशवान है। यह "मैं" नहीं हूं। "मेरा" नहीं है। "मेरी आत्मा" नहीं है। पर यह तो महज बुद्धि से मान रहे हैं। व्यवहार में कहां ? व्यवहार में तो यह शरीर ही "मैं हूं, "मेरा" है। ओह, कितना गहरा तादात्म्य स्थापित हो गया है इस शरीर के साथ ? यह उपदेशों से कैसे टूट पायेगा ? यह तो साक्षात्कार से ही भले टूटे।

ऐसे ही हजार कहता रहूं कि यह मन तो निस्सार है, जड़ है, अनित्य है। यह "मैं" नहीं हूं। यह "मेरा" नहीं है। 'मेरी आत्मा' नहीं है। लेकिन यह भी लेपों की ही बात हुई। व्यवहार जगत में तो यह मन ही "मैं"। इस मन को जो अनुभुतियां हो रही हैं, उन्हीं को "मेरी-मेरी" कहे जा रहा हूं। उनके साथ चिपके जा रहा हूं। यह आसक्ति कैसे टूटे ? ऊपर-ऊपर से हजार अपने आपको समझाता रहूं, बौद्धिक स्तर पर लेप पर लेप लगता जायेगा। व्यवहार के स्तर पर अंतर आनेवाला नहीं हैं। काम की बात नहीं होंगी। इसीलिए अपने यहां सत्य के साक्षात्कार को इतना बड़ा महत्व दिया गया। सत्य को ही सब कुछ माना गया है। सत्य को ही ईश्वर माना गया।

पर महत्व साक्षात्कार को है। प्रत्यक्षानुभूति को है। बुद्धिविलास को नहीं। कैसी भी सच्चाई क्यों न हो, जब तक उसकी स्वयं प्रत्यक्षा-नुभुति न हो तब तक तो हमारे लिए कल्पना ही है न ? बुद्धिविलास ही है न ? और यह जो सांस से काम शुरू किया, यह बुद्धिविलास का काम नहीं है। प्रत्यक्ष अनुभुति का काम शुरू किया है। धीरे-धीरे ज्ञात क्षेत्रों से अज्ञात क्षेत्र की ओर बढ़ने का काम शुरू किया है। शरीर संबंधी अज्ञात क्षेत्र। मन संबंधी अज्ञात क्षेत्र। सांस इन दोनों अज्ञात क्षेत्रों को प्रत्यक्षानुभूति के स्तर पर ज्ञात करवाने के लिए बड़ा उपयोगी सहारा है बड़े काम का पुल है।

मैं नदी के इस पार रहने वाला। इस पार की सच्चाइयों को भले खूब जानता हूं। कोई उस पार जाकर आए और वहां का मनोहारी वर्णन करे। कहे कि वह तट तो धरती पर स्वर्ग ही है। यह सुनकर मेरा मन लालायित हो उठे। चाहूं कि मैं भी उस पार को देखूं। उस पार का सुख भोगूं। पर इसके लिए जो करना है वह न करके केवल याचना भरे शब्दों में पुकारता रहूं, "ऐ नदी के वह पार ! तू यहां आ जा ! मैं तुझे देखना चाहता हूं !" तो भले जीवन भर पुकारता रहूं, वह पार मेरे पास आने वाला नहीं है। मुझे ही उस पार तक पहुंचना होगा। और वहां तक पहुंचने के लिए कोई वाहन चाहिए अथवा कोई ऐसा साधन चाहिए जो इस पार से उस पार को जोड़ता हो। इस तट को उस तट तक जोड़ने वाला कोई पुल चाहिए। ज्ञात क्षेत्र को अज्ञात क्षेत्र से जोड़ने वाली कोई कड़ी चाहिए। और सांस इस कड़ी का काम करता है। इस पुल का काम करता है। कैसे ?

अभी-अभी यह जो कहा गया कि जो शरीर के बाहरी-बाहरी अवयव हैं, अंग हैं वे सायास काम करते हैं, सप्रयत्न काम करते हैं। भीतर-भीतर जो कुछ होता है वह अनायास होता है। अपने आप होता है, बिना प्रयत्न के होता है। हमें शरीर की सायास प्रक्रियाओं से अनायास प्रक्रियाओं की जानकारी की ओर बढ़ना है। कैसे बढ़ें ?

देश के सत्यान्वेषी आत्मान्वेषी महापुरुषों ने इस निमित्त सांस का सहारा ढूंढ निकाला। उन्होंने देखा सांस की प्रक्रिया एक ऐसी प्रक्रिया है जो सायास भी काम करती है और अनायास भी। प्रयत्नपूर्वक भी सांस चलता है और बिना प्रयत्न के भी। मैं चाहूं कि सांस लंबा लूं तो लंबा, ओछा लूं तो ओछा, तेज लूं तो तेज, धीमा लूं तो धीमा ले सकता हूं। और भले जरा देर के लिए ही सही, चाहूं कि बंद कर लूं तो बंद भी कर सकता हूं। और इस पर हुक्म चलाना छोड़ दूं तो भी यह अनायास नैसर्गिक रूप से, स्वाभाविक गति से आता-जाता रहता है। सांस में ये दोनों गुण हैं। यह सायास. सप्रयत्न भी चलता है और अनायास, अप्रयत्न भी। इसीलिए यह दोनों अवस्थाओं के बीच की कड़ी है। दोनों तटों को जोड़ने वाला पुल है। हम देखेंगे कि हम इस साधना विधि द्वारा सायास सांस के सहारे-सहारे अपने भौतिक शरीर की अनायास गतिविधियों का निरीक्षण करते-करते किस प्रकार स्थूल से सूक्ष्म, सूक्ष्मतर हरकतोंका दर्शन करते हुए आगे बढ़ रहे हैं।

सांस का जैसे शरीर के साथ गहरा संबंध है. वैसे ही मन के साथ भी है। अतः सांस के सहारे सहारे आगे बढ़ते हुए जैसे शरीर-दर्शन होगा, शरीर की सूक्ष्म से सूक्ष्म प्रक्रिया का दर्शन होगा, अनुभूति होगी वैसे ही मन का दर्शन होगा, मन की सूक्ष्म से सूक्ष्म प्रक्रिया का दर्शन होगा, अनुभूति होगी। तन प्रपंच और मन प्रपंच का खूब गहरा-इयों तक दिग्दर्शन होगा। इन दोनों का पूर्ण सर्वेक्षण हो जाय तो ही तन और मन के परे की इंद्रियातीत अवस्था का दर्शन हो सकेगा। साक्षात्कार हो सकेगा। उस अवस्था को कोई चाहे जिस नाम से पुकारे —आत्मा कहे, परमात्मा कहे, मुक्ति कहे, मोक्ष कहे, निर्वाण कहे या और कुछ कहे। हमें नाम के झगड़े में नहीं पड़ना है। साक्षात्कार करना है। उस अंतिम परम सत्य का साक्षात्कार। और वहां तक पहुंचने वाले हर स्थूल-सूक्ष्म सत्य का साक्षात्कार।

परम सत्य के साक्षात्कार की यात्रा स्थूल से आरंभ होती है और सूक्ष्म से सूक्ष्म अवस्थाओं तक जाकर उनका भी अतिक्रमण कर परम सत्य तक पहुंचाती है। साक्षात्कार की इस पूरी क्रमिक यात्रा से हम दूर भागें तो कैसे होगा ? मैं यह हठ करूं कि मैं तो उसी का साक्षात्कार करना चाहता हूं जो नित्य है, शास्वत है, ध्रुव है। पर जो अनित्य है, नश्वर है उसका दर्शन क्यों करूं ? तो कैसे होगा ? किसी गहरे समुद्र के पेंदे में कोई सीप पड़ी हो और उसमें कोई अनमोल मोती हो। मेरे मन में आए कि इसे प्राप्त करना चाहिए परन्तु मैं केवल कल्पना करता रहूं वह मोती ऐसा होगा, ऐसी आबवाला होगा, ऐसी खूबसूरती वाला होगा तो मेरी यह सारी कामनाएं, सारी कल्पनाएं मुझे कहां पहुंचाएंगी ? सचमुच मुझे वह मोती दिलाने वाली नहीं हैं। यदि मुझे वह मोती प्राप्त करना है तो स्वयं उस समुद्र के ऊपरी सतह से शुरू करके उसकी ऊंची

ऊंची लहरों से जूझते हुए, उस समुद्र की गहरी जलराशि में एक-एक स्तर नीचे उतरते-उतरते उस स्थान तक पहुंचना पड़ेगा, जहां जल का क्षेत्र पार कर लिया गया और पैंदे की भूमि आ गयी। तभी मुझे वह सीप हाथ आने वाली है, इसके पहले नहीं। इसी प्रकार जो अवस्था इंद्रियातीत है, भवातीत है, लोकातीत है, वहां तक पहुंचने के लिए अपने भीतर के ऐंद्रियजगत के सारे क्षेत्र का अवगाहन करना होगा। स्वयं उसकी यात्रा करके अनुभूतियों के क्षेत्र में से गुजरना ही होगा। तब वहां पहुंचेंगे जो इंद्रियातीत है। अन्यथा यदि तट पर ही खड़े खड़े विरोध करते रहे कि पानी से मुझे क्या लेना देना है? मुझे तो सीप चाहिए। पानी से मैं क्यों जूझूं? पानी सीप थोड़े ही है। मुझे तो सीप चाहिए जिसमें अनमोल मोती है। मैं पानी को हाथ नहीं लगाऊंगा, इसको छुऊंगा, भी नहीं, पर मुझे मोती जरूर चाहिए। सारी जिंदगी ऐसे कहता रह जाऊंगा, वह मोती मुझे प्राप्त होनेवाला नहीं है। ऐसे ही यदि कहता रहूं कि इस ऐन्द्रिय अवस्था से मुझे क्या लेना-देना? शरीर और मन से मुझे क्या लेना-देना? मुझे तो उनके परे की वह इंद्रियातीत अवस्था चाहिए, भवातीत अवस्था चाहिए। तो सारी जिंदगी यूं कहते रह जाऊंगा। परन्तु जब तक अवरोधक क्षेत्र का स्वयं अनुभव करके उसकी पूरी-पूरी जानकारी प्राप्त नहीं कर लूं, उससे स्वयं जूझकर उसका अतिक्रमण न कर लूं, तब तक उसके परे की अवस्था कैसे प्राप्त होगी?

अन्तर्मुखी होकर सच्चाई के अनुसंधान करने का प्रारंभ हुआ है शरीर की देहली से, नाक के द्वार पर खड़े होकर आते-जाते सांस क निरीक्षण से। लंबी यात्रा है। इस आंतरिक अभियान की किसी भी अनुभूति को —वह स्थूल हो या सूक्ष्म—किसी पुर्वाग्रह व पूर्व मान्यता के आधार पर नहीं देखेंगे। बल्कि मान्यताओं के सभी चश्मों को उतार कर यथाभूत देखने का अभ्यास करेंगे। जब-जब जो-जो सामने आयेगा उसको वैसे ही स्वीकार करते हुए आगे बढ़ेंगे। स्थूल से अधिक सूक्ष्म अवस्था की ओर बढ़ेंगे। और अधिक सूक्ष्म अवस्था की ओर बढ़ेंगे। तभी समग्र शारीरिक प्रपंच के बारे में जानेंगे, तभी समग्र मानसिक प्रपंच के बारे में जानेंगे। उन्मुक्तभाव से सच्चाई का अनुसंधान करना है। अपने ही भीतर, अपने ही बारे में जो सच्चाई है, उसे खोजना है। किसी दार्शनिक मान्यता की पुष्टि के लिए यह साधना नहीं कर रहे। प्रत्यक्षानुभूति द्वारा सत्यशोधन के लिए ही यह अभ्यास करने आए हैं।

किसी की कही हुई बात को ही मानकर रह जायेंगे तो नदी के इस पार ही रह जायेंगे। उस पार की केवल कल्पना भर होगी। कामना भर होगी। इससे लाभ कुछ नहीं होगा। महज अंधविश्वास फैलेगा। गुरुडम का रोग बढ़ेगा। परन्तु किसी की अजमाई हुई सच्चाई निजी प्रयत्न द्वारा प्रत्यक्षानुभूति से जान लेंगे तो सचमुच अपना कल्याण साध लेंगे। इसी कल्याणलाभ के लिए यहां आए हैं। और शुद्ध सांस की प्रत्यक्षानुभूति से काम शुरू किया है। क्रमशः.....

श्री रिषभदासजी रांका का देहावसान

विगत १० दिसम्बर को प्रातः ७-३० बजे प्रसिद्ध साहित्यकार, जैन जगत के प्रबुद्ध जन-सेवक और राष्ट्रभक्त श्री रिषभदासजी रांका का पूना में देहावसान हुआ। पिछले तीन वर्षों से आप विपश्यना के साधक रहे हैं और इससे स्वयं लाभान्वित होकर अनेक लोगों को इस कल्याणमार्ग की ओर प्रेरित करते रहे हैं।

पिछले दिनों शारीरिक अवस्था के कारण जब आप 'बम्बई अस्पताल' में भर्ती हुए और वहां आपकी षौरुषग्रन्थि का आपरेशन हुआ तो पूज्य गुरुजी मिलने गए थे। अस्पताल में भी आपकी साधना-जन्य समता प्रसंशनीय थी। आपरेशन के बाद आप मुस्कराते हुए पूना वापस लौटे थे।

अपने शोक-संदेश में आपके छोटे भाई श्री ईश्वरलाल रांका ने लिखा है, कि "बड़े ही शांत वातावरण में पूर्ण समता व समाधानी वृत्ति को रखते हुए ही उन्होंने शरीर छोडा।" ऐसी प्रबुद्ध देह-च्युति निश्चय ही उनकी सद्गति का कारण बनेगी और इसकी जानकारी 'विपश्यना-जगत' को बड़ी स्फूर्तिदायक प्रेरणा प्रदान करेगी।

समस्त "विपश्यना-परिवार" दिवंगत के प्रति हार्दिक श्रद्धांजलि एवं शोक-संतप्त परिवार के प्रति हार्दिक संवेदना प्रकट करता है। (संपादक)

इगतपुरी में स्वयं शिविर

क्रमांक ५) ,, ८- १-७८ से १९- १-७८ तक
,, ६) ,, २१- १-७९ से १- २-७८ तक
,, ७) ,, १४- २-७८ से २५- २-७८ तक
,, ८) ,, २५- २-७८ से ८- ३-७८ तक

१) स्वयं-शिविर में केवल वे पुराने साधक ही सम्मिलित हो सकेंगे जो कि विद्यापीठ की अनुशासन-संहिता का कड़ाई से पालन कर सकें।

२) कोई साधक यदि पूरे शिविर में सम्मिलित न हो सके तो वह अपनी सुविधानुसार बीच में कम दिनों के लिए भी सम्मिलित हो सकता है।

३) प्रत्येक अवस्था में आवश्यक है कि व्यवस्थापक से अपना स्थान सुरक्षित रखने की पूर्व स्वीकृति प्राप्त कर ले।

४) यथासंभव प्रत्येक शनिवार-रविवार को पूज्य गुरुजी 'धम्मगिरि' पर उपस्थित रहेंगे। अतः जिस साधक को कोई विशेष कठिनाई हो, उनसे मार्ग-दर्शन प्राप्त कर सकेगा।

५) स्वयं-शिविर में अन्य सभी सुविधाएं उपलब्ध रहेंगी।

"विपश्यना" पाठक ध्यान दें।

'विपश्यना' पत्रिका का शुल्क-वर्ष लेखा-सुविधा (अकाउंटिंग) को ध्यान में रखते हुए जनवरी से दिसम्बर तक का निश्चित किया हुआ है। अतः ज्ञातव्य है कि 'वार्षिक-शुल्क' देने वाले भाई-बहनों का शुल्क इस अंक के साथ समाप्त हो रहा है। कृपया वर्ष १९७८ केलिए अपना शुल्क शीघ्र भेजकर **पत्रिका जारी रखने की पुष्टि करें**। (नोट : कृपया शुल्क की रकम पता एवं साधकसंख्या सहित धनादेश (मनीआर्डर) से भेजें, पोस्टल आर्डर से नहीं।) -संपादक

आगामी शिविर

शिविर क्रमांक १४५ **हैदराबाद** (वि. अ. सा. के.) दि. ४– २–७८ से १४– २–७८ तक (हिन्दी)

संपर्क :– श्री. रतीलाल एम. मेहता, द्वारा **विपश्यना अन्तर्राष्ट्रीय साधना केन्द्र**
१२·६, किमी. नागार्जुन सागर रोड, कुसुम नगर, हैदराबाद–५०० ०३५ (फोन–५९२५९)

शिविर क्रमांक १४६ **इगतपुरी** (वि. वि. वि.) दि. ११–३–७८ से २२–३–७८ तक (अंग्रेजी)

संपर्क : व्यवस्थापक, विपश्यना विश्व विद्यापीठ, धम्मगिरि, इगतपुरी–४२२ ४०३. (फोन नं. ७१)

नोट :– १) कृपया साधना शिविर में शामिल होने से पूर्व शिविर–व्यवस्थापक के पास अपना नाम रजिस्टर करा लें। किसी कारणवश शिविर में सम्मिलित न हो सकते हों तो कृपया पर्याप्त समय रहते सूचित करें ताकि किसी अन्य प्रत्याशी को स्वीकृति दी जा सके।

२) अंग्रेजी शिविर में हिन्दी प्रवचन सुनने हेतु हिन्दी टेप की सुविधा उपलब्ध रहेगी।

३) शिविरों के नियम कड़े होते हैं। उनका कड़ाई से पालन कर सकें तो ही भाग लेना चाहिए।

ग्राम : प्रेमकेबल फोन नं. ४४५४७/६९७०३९
मेसर्स प्रीमियर केबल एण्ड कम्पनी
१४/१५ एफ, कन्नॉट प्लेस, नई दिल्ली–११० ००१.
की मंगलकामनाओं सहित।

ग्राम : रंगसुन्दर फोन नं. २७३२३ (५ लाइने)
मेसर्स सुदर्शन केमिकल इण्डस्ट्रीज लि.,
१६२, वेल्लेस्ली रोड, संगम ब्रिज, पुणे–४११ ००१.
की मंगल कामनाओं सहित।

दोहे धर्म के

ध्यान करे जब सांस का, ध्यान सत्य का होय।
कहीं न मिथ्या कल्पना, पथ-अवरोधक होय॥
स्वानुभूति ही सत्य है, परानुभूति जंजाल।
सत्य तेज से ही कटे, मिथ्या माया-जाल॥
जो अपनी अनुभूति है, सच्चा दर्शन सोय।
परानुभूति अपने लिए, महज कल्पना होय॥
तथ्य तथ्य के पथ चले, पूर्ण-कृत्य सो होय।
तथता के बल पहुंचकर, स्वयं तथागत होय॥
तन का मन का सांस से, बड़ा गहन संबंध।
इसे देखते देखते, टूटे सब भव–बंध॥
मंगलमय कल्याणमय, साधन आना–पान
तन मन देखत देखते, देखें पद निर्वाण॥

दूहा धरम रा

निज दरसन को पथ मिल्यो, मंगल जग्यो अनंत।
टूट्या बंधन दुक्ख का, पंथ चलंत चलंत॥
पर दरसन पीड़ा जगै, स्वदरसन सुख होय।
सांस देखतां देखतां, स्व दरसन ही होय॥
बारै बारै भटकतो, देख्यो दुखी जहान।
सांस सहारै उतरग्यो, भीतर सुख की खान॥
सांस देखतां देखतां, सांच प्रगटतो जाय।
सांच देखतां देखतां, परम सांच मिल जाय॥
सांस देखतां देखतां, देख्यो तन परपंच।
सांस देखतां देखतां, देख्यो मन परपंच॥
सांस देखतां देखतां, देख्यो सच को सार।
सांस देखतां देखतां, पूग्यो परलै पार॥

सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट के लिए संपादक मुद्रक प्रकाशक : **मधु काबरा**, सिलवेस्टर बिल्डिंग, २० शहीद भगतसिंह मार्ग बम्बई २३.
टेलीफोन : २६९४११, मुद्रण स्थान : **अक्षरचित्र मुद्रणालय** सातपूर, नासिक ४२२ ००७. टेलिफोन ८२५१
विज्ञापन : आधा पृष्ठ रू. ४००/–, चौथाई पृष्ठ रू. २००/–, वार्षिक शुल्क रू. ५/, आजीवन शुल्क रू. ५१/–

"विपश्यना"
पो. रजि. नं. NSK/64
प्रेषक :
सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट
विपश्यना विश्व विद्यापीठ
धम्मगिरि, इगतपुरी, ४२२ ४०३.
(नासिक – महाराष्ट्र)

To